RNI No.: RAJBIL/2013/54153

ISSN : 2322-0074

अलख दृष्टि

ALAKH DRISHTI

(भाषा, दर्शन, साहित्य, संस्कृति एवं मानविकी की संवाहिका त्रैमासिक शोध पत्रिका)

वर्ष-4 • अंक-01 • त्रैमासिक • जनवरी-मार्च, 2016

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ सं.
01.	व्याकरणमहाभाष्य में विवेचित औषधि एवं चिकित्सा पद्धति	प्रो. सत्यप्रकाश दुबे	06-10
02.	भगवद्गीता का भक्ति योग	प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी 'रत्नेश'	11-16
03.	वस्तु -शब्द मैत्री का कवि - भवानी प्रसाद मिश्र	डॉ. ममता खांडल	17-21
04.	भारत में सामाजिक न्याय : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य	डॉ. जुगल किशोर दाधीच	22-33
05.	अध्यात्म एवं विज्ञान से चरित्र निर्माण और वैश्विक शान्ति	प्रो. कंचन शर्मा	34-36
06.	स्त्रीत्व को आवाज देती आज की नारी	सुश्री दिव्या सिंह	37-40
07.	**Nonviolence and Peace Education**	**Prof. Anil Dhar**	41-46
08.	**Distance Education and Women in India**	**Tilak Raj Sharma, Mohd. Alyas**	47-57
09.	पुस्तक समीक्षा	डॉ. विकास शर्मा	58

भारत में सामाजिक न्याय : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

डॉ. जुगल किशोर दाधीच

भारत में मुगल साम्राज्य का आखिरी दौर राजनैतिक निराशा और सामाजिक हताशा भरा था। शुरू में बंगाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने पाँव मजबूत किये और थोड़े समय के भीतर उसने शेष भारत पर अपना आधिपत्य कायम कर लिया। यूँ तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के उत्कर्ष और सत्ता में आने के साथ ही परिवर्तन की पृष्ठभूमि निर्मित होने लगी थी तथापि भारतीय चिंतन और जीवन पद्धति में ठोस परिवर्तन का सूत्रपात भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के उपरांत ही हुआ।

मध्ययुग में मुगलों के सांस्कृतिक प्रभाव को रोकने के लिये हिन्दू समाज में संतों की एक लम्बी एवं अटूट श्रृंखला प्रादुर्भूत हुई। संतों ने भारतीय जीवन दर्शन को जन भाषा में लोगों तक पहुंचाया, संस्कृति की वृहत परम्परा को लुप्त होने से बचाया और जनजीवन को विघटित होने से रोका। संतों का प्रयास लोकभाषा के माध्यम से परम्परात्मक सिद्धान्तों को सरल रूप में जन-जन तक पहुंचाना था। उन्होंने सिद्धांतों की न तो कोई नई व्याख्या प्रस्तुत की और न ही जनजीवन में कोई नई चेतना जागृत की।

ब्रितानी उपनिवेश की स्थापना के साथ भारतीय समाज पाश्चात्य समाज और संस्कृति के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आया। समय के साथ यह सम्पर्क बढ़ा और घनिष्ठ हुआ। पश्चिमी समाज परम्परा के बंधन से मुक्त होकर आधुनिकता में प्रवेश कर चुका था। तर्क, युक्ति-संगतता और प्रत्यक्ष-अनुभव पश्चिम में चिंतन और आचरण के आधारभूत तत्त्व के रूप में स्थापित हो चुके थे। वैज्ञानिक एवं भौतिक दृष्टिकोण के विकास के साथ पश्चिम में न केवल चिंतन चर्चा के प्रभाव से मुक्त हुआ अपितु समाज व्यवस्था भी चर्चा के बंधन से मुक्त हुई। राज्य तंत्र समाप्त हुआ और लोकतंत्र की स्थापना हुई। कमोबेश सर्वत्र पवित्रता और कुलीनता की धारणायें तथा वंशवाद राज्य-तंत्र के आधारभूत स्तम्भ थे। राज्य-तंत्र के समाप्त होने के साथ पश्चिम में ये तत्त्व सिद्धांत रूप में आधारहीन हो गये और स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व के घोषित लक्ष्य के रूप में सामाजिक न्याय पर लोकतंत्र की बुनियाद रखी गई।

शासक के रूप में अंग्रेज अपने साथ एक नया चिंतन और एक नया सामाजिक दृष्टिकोण लेकर भारत में आये। अंग्रेजों के सम्पर्क में आने के फलस्वरूप भारतीय जनमानस में एक नई चेतना का विकास हुआ जिससे सामाजिक व धार्मिक कुरीतियों के विरुद्ध व्यापक जागृति पैदा हुई।

कम्पनी शासन की समाप्ति और ब्रिटिश शासन के प्रत्यक्ष नियंत्रण में आने के पश्चात् भारत में उदारवादी लौकिक शिक्षा का तेजी से प्रसार हुआ। उद्योगों की स्थापना हुई और संचार व आवागमन के साधनों का तेजी से विकास हुआ। भारत में उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया ने पाश्चात्यीकरण को जन्म दिया। पाश्चात्य समाज के वैज्ञानिक एवं औद्योगिक ज्ञान, युक्ति-संगत एवं लौकिक दृष्टिकोण, लोकतांत्रिक अनुभव तथा मुक्त जीवन पद्धति का भारतीय जनजीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। पाश्चात्य सामाजिक दर्शन जन्मगत ऊँचनीच के भेद के स्थान पर स्वतंत्रता एवं समानता पर आधारित प्रजातांत्रिक सम्बन्धों एवं संस्थाओं के विकास का पक्षधर था।

भारत में नवजागरण की तीन दिशायें थी। प्रथमतः समाज में एक नव प्रबुद्ध वर्ग का उदय हुआ जिसने आडम्बर और अंधविश्वास का खुलकर विरोध किया और वैज्ञानिक चिंतन को ग्रहण किये जाने पर जोर दिया। द्वितीयतः, धर्म को कर्मकाण्ड और पाखण्ड से मुक्त कर बुनियादी आध्यात्मिक सिद्धान्तों के आधार पर पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया गया और तृतीयतः, सामाजिक बुराइयों और कुरीतियों को दूर करने के उद्देश्य से नई संस्थाओं का गठन किया गया और आधुनिक शिक्षा के प्रचार व प्रसार के लिए स्कूलों व कॉलेजों की स्थापना की गई। इस प्रकार मुगलकालीन संत-परम्परा से हटकर ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में भारत में नवजागरण धार्मिक पुनरुत्थान और सामाजिक सुधार के युग के रूप में प्रवर्तित हुआ।

राजा राममोहन राय (1772-1833) पुनर्जागरण के प्रणेता और आधुनिक भारत के जनक थे। वे भारतीय इतिहास की वह कड़ी है जो उसके अतीत को उसके वर्तमान से जोड़ती है। राय एक बौद्धिक व तर्कशील व्यक्ति थे। उनकी दृष्टि तार्किक तो थी ही नैतिक व मानवतावादी भी थी। उन्हें तुलनात्मक धर्म और विज्ञान में बहुत रुचि थी। उन्होंने हिन्दू धर्म ग्रंथों के साथ बाइबिल एवं कुरान का गहन अध्ययन किया। राय ने हिन्दू धर्म की कट्टरवादिता को नकारा और धार्मिक पाखण्ड, अंधविश्वास व कर्मकाण्ड का जम कर विरोध किया। धर्म के प्रति उनका दृष्टिकोण तार्किक था। वे अंधभक्ति में विश्वास नहीं करते थे। उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना की। जिसके माध्यम से उन्होंने समाज के आचार-विचार में व्याप्त बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया।

सन् 1818 में राय ने सती प्रथा के विरुद्ध संघर्ष छेड़ा। यह संघर्ष लगभग बीस वर्षों तक चलता रहा। अंततः इस संघर्ष में राय की जीत और कट्टरवादी हिन्दुओं की पराजय हुई। तत्कालीन वायसराय लार्ड विलियम वेन्टिक ने रेगुलेशन XVIII के माध्यम से सती प्रथा को अवैधानिक घोषित किया। इस प्रकार वर्ष 1829 नव हिन्दू समाज के इतिहास का स्वर्णिम प्रभात बनकर आया जबकि राय हिन्दू नारी को अमानवीय और घिनौनी सती प्रथा से मुक्त कराने में सफल हुये। सती प्रथा के विरुद्ध राय की विजय वस्तुतः दासत्व के विरुद्ध स्वतंत्रता की, अन्याय के विरुद्ध न्याय की, असमानता के विरुद्ध समानता की, कट्टरवादिता के विरुद्ध प्रगतिशीलता की और परम्परावादिता के विरुद्ध आधुनिकता की विजय थी।

राय ने हिन्दू समाज में प्रचलित तत्कालीन उत्तराधिकार के नियम को भेदभाव पूर्ण बताया क्योंकि उसमें नारी के साथ न्याय नहीं किया गया था। उनका कहना था कि स्मृतिकारों विशेषरूप से याज्ञवल्क्य, नारद, कात्यायन, विष्णु तथा वृहस्पति आदि ने हिन्दू नारी को अपने पति व पिता की सम्पत्ति में अधिकार प्रदान किया है। अपने लेख 'माडर्न एनक्रोचमेंट आन द एनसेन्ट राइट्स ऑफ फीमेल एकार्डिंग टू द हिन्दू ला ऑफ इनहेरिटेन्स' (1829) में उन्होंने नारी को परिवार की सम्पत्ति में न्यायपूर्ण अधिकार प्रदान किये जाने का पुरजोर समर्थन किया।

आर्थिक मुद्दे पर राय सामन्तवाद के विरुद्ध थे। वे जमींदारों और उनके बर्खुरदारों के हाथों गरीब किसानों के शोषण के विरुद्ध थे।

राय भारतीयों में शिक्षा के प्रसार को बहुत महत्त्व देते थे। उनके मन में संस्कृत के विशाल ज्ञान भण्डार विशेष रूप से उपनिषद व गीता के प्रति बहुत सम्मान था तथापि वे परम्परात्मक शिक्षा की संस्कृत-पद्धति के विरुद्ध थे क्योंकि इसके माध्यम से देश में नव जागरण का प्रसार संभव नहीं था। इसलिये उन्होंने आधुनिक उदार व प्रबुद्ध शिक्षण पद्धति को अपनाने पर जोर दिया जिसके द्वारा लोगों को गणित और आधुनिक विज्ञान की विविध विधाओं की जानकारी प्रदान की जा सके। वर्ष 1816-17 में उन्होंने भारतीयों की सहायता से भारतीयों के लिये कलकत्ता में प्रथम अंग्रेजी स्कूल की स्थापना की। उन्हीं की पहल पर 1822-23 में हिन्दू कॉलेज खुला।

देवेन्द्रनाथ टैगोर और केशवचन्द्र सेन ने राजा राममोहन राय द्वारा आरंभ किये गये सुधार कार्यों को आगे बढ़ाया। सेन पुरोहितवाद के विरुद्ध थे। उनका मानना था कि हिन्दू धर्म में अज्ञान व अंधविश्वास के प्रसार के लिये ब्राह्मण पुरोहितवाद उत्तरदायी है। पुरोहितवाद ही मूर्ति पूजा और कर्मकाण्ड का जनक है। वे जातिबंधन के भी बहुत खिलाफ थे। उन्होंने नारी समाज में शिक्षा के प्रसार पर जोर दिया। उनके प्रयासों के फलस्वरूप ब्रह्म विवाह को वैधानिक मान्यता मिली।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जाति व्यवस्था का विरोध किया। वे जाति पर आधारित सामाजिक असमानता के विरुद्ध थे। उन्होंने हिन्दू समाज में वर्णाश्रम धर्म की पुनर्स्थापना पर जोर दिया। वर्णाश्रम उनकी दृष्टि में जीवन की एक पद्धति है न कि असमानता का सिद्धान्त। उनका कहना था कि वर्ण का निर्धारण व्यक्ति के कार्य करने की मनौवैज्ञानिक क्षमता और उसके गुण के आधार पर होना चाहिए। व्यक्ति के कार्य और व्यवसाय वर्ण का निर्धारण करते हैं न कि जन्म। इस प्रकार दयानन्द के विचार लोकतांत्रिक थे क्योंकि वे व्यक्ति की गुणवत्ता को महत्त्व देते थे न कि उसके जन्म को। वर्ण के रूप में वे समाज के व्यवसायिक संस्तरण को महत्त्व देते थे, जिसमें जाति की भांति ऊंचनीच के विचार का अभाव होता है।

दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज (1875) की स्थापना की। सत्यार्थ प्रकाश आर्य समाज का मूल ग्रंथ है। आर्य समाज ने मूर्ति पूजा, कर्मकाण्ड व पाखण्ड का निषेध कर वैदिक धर्म का पुनरुत्थान किया। दयानन्द ने हिन्दू समाज में ऊंचनीच और छुआछूत का खुलकर विरोध किया और शुद्धि के माध्यम से अस्पृश्यों व अन्य हिन्दुओं के लिये जो पूर्व में मुसलमान या इसाई बन गये थे हिन्दू धर्म में लौटने का मार्ग प्रशस्त किया। आर्य समाज ने शूद्रों व दलितों को जनेऊ पहनने, मंत्रोच्चार करने तथा वेद पढ़ने की स्वतंत्रता प्रदान कर उन्हें सामाजिक हीनता से मुक्ति दिलाने का उल्लेखनीय कार्य किया (सिंह, 1986:77)। धार्मिक सुधार के साथ शिक्षा के प्रचार और प्रसार में भी आर्य समाज ने महती भूमिका अदा की।

जस्टिस एम.जी. रानाडे के नेतृत्व में प्रार्थना समाज (1897) की स्थापना हुई। प्रार्थना समाज ने ब्रह्म समाज और आर्य समाज की सामाजिक समानता की धारणा और जाति विरोधी आंदोलन को व्यापक और मजबूत बनाने का काम किया। इसने दलितों के उत्थान के लिये उपयोगी कार्य किया। इस हेतु इसने एक पृथक मिशन (1898) की स्थापना की।

ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज ने जहाँ जाति के पूर्ण विच्छेद की बात की वहां आर्य समाज ने हजारों जातियों में विभक्त हिन्दू समाज को चार वर्णों में पुनर्गठित करने का प्रयास किया। आर्य समाज का सबसे बड़ा योगदान अस्पृश्य व अन्त्यज समझी जाने वाली जातियों को हिन्दू समाज की मुख्य धारा से जोड़ने का था। शुद्धि के माध यम से आर्य समाज ने अन्य धर्मों में धर्मान्तरित हिन्दुओं को पुनः हिन्दू धर्म में दीक्षित होने का अवसर प्रदान किया।

उपर्युक्त धर्म सुधार आंदोलनों ने हिन्दू समाज की परम्परागत जड़ता को भंग कर इसे अधिक लचीला व प्रगतिशील स्वरूप प्रदान किया किंतु इनकी सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि ये जनसाधारण को अधिक सक्रिय करने में असफल रहे। ये हिन्दू समाज की मुख्य धारा से अपने को जोड़ने में कामयाब नहीं हो सके। परिणामस्वरूप इनका प्रभाव वृहत हिन्दू समाज की तुलना में कुछ सीमित

लोगों तक ही रहा। ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज शिक्षित व्यक्तियों में अधिक लोकप्रिय रहे जबकि आर्य समाज का प्रभाव मुख्यतया पंजाब एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश की मध्यम जातियों तथा हिन्दू धर्म में पुनरीक्षित व्यक्तियों पर ही अधिक रहा (सिंह, 1986:77-78)।

महाराष्ट्र से लेकर लगभग संपूर्ण दक्षिण भारत में सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष जारी था। इन संघर्षों का नेतृत्व अधिकांशतया निम्न जातियों के व्यक्तियों के हाथ में था। ये आंदोलन जाति भेद व छुआछूत के विरुद्ध तो थे ही, इनका एक अन्य उल्लेखनीय पक्ष था-ब्राह्मण वर्चस्व का विरोध। इसलिए इन्हें अब्राह्मण आंदोलन भी कहा जाता है। दक्षिण भारत के समाज सुधार आंदोलनों में ब्राह्मण विरोध की लहर बहुत तीव्र थी।

महाराष्ट्र में फूले ने 'सत्य शोधक समाज' (1873) की स्थापना की। फूले ने जातीय भेदभाव और ब्राह्मण प्रभुता को खुली चुनौती दी। देश में सर्वप्रथम उन्होंने पूना में अछूतों के लिये एक विद्यालय (1843) की स्थापना की। उनकी पत्नी सावित्री बाई फूले ने महिलाओं में जागृति उत्पन्न करने तथा उन्हें शिक्षित करने की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया। इसी प्रकार मैसूर में सामाजिक भेदभाव और ऊँचनीच के विरोध में वोक्कालिंग और लिंगायत संगठित हुये। उनकी देखा देखी अछूत भी अपनी मुक्ति के लिये एकजुट हुए। मद्रास में बी पंतलू और आर वेंकटरमन ने जाति के विरुद्ध आवाज उठाई और दलितों की दयनीय दशा की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया (सिंह, 1986:78)।

जाति व्यवस्था के खिलाफ पंजाब में आदि धर्म आंदोलन (1926) का सूत्रपात हुआ। आदि धर्म आंदोलन के जनक स्वामी अच्चुत आनन्द थे। ये निम्न जाति के थे। इस आंदोलन के पीछे मान्यता यह थी कि अछूत द्रविण जाति के भारतीय मूल निवासी हैं, जाति व्यवस्था बाह्य विजेताओं द्वारा उन पर थोपी गई है। यह भारत की मूल व्यवस्था नहीं है। अतः इन आंदोलनों ने 'जाति अंतर्विवाह' के नियम तथा जातीय भेदभाव का विरोध किया (सिंह, 1986:99)। पंजाब के अतिरिक्त देश के अन्य भागों में भी दलितों ने जाति के विरुद्ध आंदोलन छेड़े। इन आंदोलनों में तमिलनाडु में 'आदि द्रविण आंदोलन' आन्ध्र में 'आदि आन्ध्र आंदोलन' कर्नाटक में 'आदि कर्नाटक आंदोलन' कानपुर में 'आदि हिन्दू आंदोलन' बंगाल में 'नाम शूद्र आंदोलन' तथा महाराष्ट्र में अम्बेडकर के नेतृत्व में आयोजित 'महार आंदोलन' मुख्य हैं।

बीसवीं सदी के आरंभ में श्री नारायण गुरु स्वामी ने दलितों की मुक्ति को दृष्टिगत रखते हुए 'एक जाति, एक ईश्वर, एक धर्म' के सिद्धान्त के आधार पर हिन्दू धर्म के समानान्तर एक नये धर्म का प्रतिपादन किया जो 'श्री नारायण धर्म' के नाम से जाना जाता है। इस धर्म के प्रभावस्वरूप केरल की एक भूतपूर्व अछूत जाति 'इझावा' से 'श्री नारायण धर्म परिपालन' आंदोलन का तेजी से प्रसार हुआ। अब्राह्मण आंदोलन का चरम स्वरूप हमें दक्षिण भारत के मद्रास प्रांत में द्रविण आंदोलन के रूप में देखने को मिलता है। राम स्वामी नायकर ने 'सेल्फ रेस्पेक्ट मूवमेंट' चलाया और अपने अनुयाइयों से ब्राह्मण पुरोहित के स्थान पर अपना पुरोहित रखने को कहा। 'द्रविण कजगम' आंदोलन ने हिन्दू संस्कृति (अर्थात् आर्य संकृति), हिन्दू धर्म (अर्थात् आर्य धर्म) तथा हिन्दी भाषा के स्थान पर द्रविण संस्कृति, द्रविण धर्म तथा द्रविण भाषा को अपनाये जाने पर जोर दिया। आगे चलकर इस आंदोलन नें 'द्रविण मुनेत्र कजगम' आंदोलन को जन्म दिया जिसने न केवल द्रविण भाषा, द्रविण संस्कृति और द्रविण समाज अपितु द्रविण राष्ट्र की स्थापना को अपना लक्ष्य निरुपित किया (सिंह, 1986:78-79)।

स्वामी विवेकानन्द राष्ट्रीय आंदोलन के आध्यात्मिक जनक थे (सिंह, 1986:78)। उन्होंने हिन्दू समाज में व्याप्त अंधविश्वास व कर्मकाण्ड पर गहरा प्रहार किया। उनका कहना था कि उस जाति से तुम क्या आशा कर सकते हो जो सैकड़ों वर्षों तक यह जटिल प्रश्न हल करती रह गई हो कि पानी भरा लोटा दाहिने हाथ से पीना चाहिए या बायें हाथ से। इससे और अधिक अवनति क्या हो सकती है कि देश के बड़े-बड़े मेधावी मनुष्य भोजन के प्रश्न को लेकर तर्क करते हुए सैंकड़ों वर्ष बिता दें; इस बात पर विवाद करते हुए

कि तुम हमें छूने लायक हो या हम तुम्हें और छूत-अछूत के कारण कौन सा प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। वेदान्त के वे तत्त्व, ईश्वर और आत्मा सम्बन्धी सबसे उदात्त तथा महान सिद्धान्त जिनका सारे संसार में प्रचार हुआ था प्रायः नष्ट हो गये, निविड़ अरण्यवासी कुछ संन्यासियों द्वारा रक्षित होकर वे छिपे रहे और शेष सब लोग छूत-अछूत, खाद्य-अखाद्य और वेशभूषा जैसे गुरुतर प्रश्नों को हल करने में व्यस्त रहे (विवेकानन्द संद प्रसाद, 1991 : 299)।

स्वामी विवेकानन्द वैयक्तिक व सामूहिक जीवन में धर्म को बहुत महत्त्व देते थे। उनका (विवेकानन्द, 1973 बः 116) कहना था कि भारत में किसी प्रकार के सुधार या उन्नति की चेष्टा करने के पहले धर्म-प्रचार आवश्यक है। धर्म से उनका आशय मिथ्याचार से नहीं अपितु निरपेक्ष वैदान्तिक सिद्धान्तों से है जो ईश्वर और मनुष्य के सम्बन्धों की व्याख्या करता है और नश्वरता से अनश्वरता की ओर बढ़ने का मार्ग प्रशस्त करता है। विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म में व्याप्त अंधविश्वास, मिथ्याचार, पाखण्ड व कर्मकाण्डीय संकीर्णता का विरोध किया। वे एकेश्वरवाद, आत्मा की पवित्रता और आचरण की परिशुद्धता के पक्षधर थे। उन्होंने धर्म में ब्राह्मणवाद और ब्राह्मण वर्चस्व का विरोध किया। विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म के मानवीय व सामाजिक पक्ष को उजागर किया और सामाजिक सहिष्णुता, समानता तथा विश्व बंधुत्व सम्बन्धी भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना की। वे भारतीय समाज में नवजागरण के ज्योति पुंज और युवाओं के प्रेरणास्रोत थे।

विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। मिशन के माध्यम से उन्होंने देश में धार्मिक व सामाजिक सुधार के लिये उल्लेखनीय कार्य किया। वे भारतीय समाज के पुनरोत्थान में नारी की भूमिका को बहुत महत्त्व देते थे। उनका यह मानना था कि प्राचीन भारत में नारी की स्थिति खराब नहीं थी। न तो नारी पुरुष से हीन थी और न ही उससे असमानता का व्यवहार होता था। विवेकानन्द (1973 अः 266) का कहना था कि परिस्थितियों ने हमारे लिये अनेक शताब्दियों से नारी की रक्षा की आवश्यकता को अनिवार्य बनाया है। हमारे इस रिवाज का कारण इस तथ्य में है; नारी की हीनता में नहीं।

नारी के विकास में शिक्षा की भूमिका पर महत्त्व देते हुए विवेकानन्द (1973 अ:268) ने कहा कि निश्चय ही नारी की समस्यायें बहुत सी हैं और गंभीर हैं पर उनमें एक भी ऐसी नहीं है जो शिक्षा से हल न की जा सकती हो। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि हम नारी की स्थिति से कदापि संतुष्ट नहीं हैं पर हमारा हस्तक्षेप करने का अधिकार केवल शिक्षा का प्रचार कर देने तक ही सीमित है। हमें नारियों को ऐसी स्थिति में पहुंचा देना चाहिए जहां वे अपनी समस्या को अपने ढंग से सुलझा सके। उनके लिये यह काम न कोई कर सकता है और न किसी को करना ही चाहिए। भारतीय नारियां संसार की अन्य किन्हीं भी नारियों की भांति इसे करने की क्षमता रखती हैं (सिंह, 1973 अः 267)।

विवेकानन्द (1973 अः 108) भारत में सामाजिक सुधार को बहुत महत्त्व देते थे किन्तु सुधार से उनका आशय केवल इधर उधर के या ऊपरी सुधार से नहीं था बल्कि वे आमूल सुधार चाहते थे। उनका (विवेकानन्द, 1973 ब : 111) कहना था कि गत शताब्दी में सुधार के लिये जो भी आंदोलन हुए हैं उनमें से अधिकांश केवल ऊपरी दिखावा मात्र ही रहे हैं। उनमें से प्रत्येक ने केवल प्रथम दो वर्णों तक ही सम्बन्ध रखा है, शेष दो से नहीं। विधवा के प्रश्न से सत्तर प्रतिशत भारतीय स्त्रियों का कोई सम्बन्ध नहीं है इन आंदोलनों का सम्बन्ध भारत के केवल उच्च वर्णों से ही रहा है जो जन साधारण का तिरस्कार करके स्वयं शिक्षित हुए हैं। यह सुधार नहीं कहा जा सकता। सुधार करने में हमें चीज के भीतर उसकी जड़ तक पहुंचना होता है।

विवेकानन्द जातिगत भेदभाव और छुआछूत के बहुत विरुद्ध थे। उन्होंने अस्पृश्यता को सामाजिक अभिशाप निरूपित किया और कहा कि अस्पृश्यता का कोई सामाजिक, नैतिक व धार्मिक औचित्य नहीं है। उनकी दृष्टि में अस्पृश्य समस्या का समाधान हिन्दू धर्म व समाज में शांतिपूर्ण सुधार के माध्यम से ही अधिक प्रभावकारी हो सकता है (सिंह, 1986:78)।

महाभारत को उद्धृत करते हुए विवेकानन्द (1973 ब:186-90) ने कहा कि सतयुग के आंरभ में एक ही जाति ब्राह्मण थी और फिर पेशे के भेद से वह भिन्न-भिन्न जातियों में बंटती गई भविष्य में जो सतयुग आ रहा है उसमें ब्राह्मणोत्तर सभी जातियां फिर ब्राह्मण रूप में परिणित होंगी इसलिये भारतीय जाति समस्या की मीमांसा इस प्रकार होती है कि उच्च वर्णों को मिटाना नहीं होगा, ब्राह्मणों का अस्तित्व लोप करना नहीं होगा जातियों का आपस में झगड़ना बेकार है, इससे हम और भी बंट जायेंगे, और भी कमजोर हो जायेंगे, और भी गिर जायेंगे। उच्च वर्णों को नीचे उतार कर इस समस्या की मीमांसा नहीं होगी किंतु नीची जातियों को ऊंची जातियों के बराबर उठाना होगा। वह योजना, वह प्रणाली क्या है? उस आदर्श का एक छोर ब्राह्मण है और दूसरा छोर चाण्डाल, और सम्पूर्ण कार्य चाण्डाल को उठाकर ब्राह्मण बनाना है। ब्राह्मण जाति का कर्त्तव्य है कि भारत की सब जातियों के उद्धार की चेष्टा करे। यदि वह ऐसा करती है और जब तक ऐसा करती तभी तक वह ब्राह्मण है और अगर वह धन के चक्कर में पड़ी रहती है तो वह ब्राह्मण नहीं है। ब्राह्मणों ने शुरू से ही साधारण जनता के लिये वह (शिक्षा व ज्ञान) खजाना नहीं खोला। हम इसलिये अवनत हो गये यह कार्य (अब) सबसे पहले ब्राह्मण को ही करना होगा। बंगाल में एक पुराना अंधविश्वास है कि जिस गोखुरे सांप ने काटा हो यदि वह खुद अपना विष खींच ले तो रोगी जरूर बच जायेगा। अतएव ब्राह्मणों को ही अपना विष खींच लाना होगा।

विवेकानन्द (1973 ब : 120-22) देश भक्ति को बहुत महत्त्व देते थे। देश भक्ति से उनका आशय सामाजिक न्याय पर आधारित एक आदर्श समाज की स्थापना के लिये पहल करना है। उनका कहना था कि कोई बड़ा काम करने के लिये तीन बातों की आवश्यकता होती है- पहला है हृदय की अनुभव शक्ति (जिसे हम परानुभूति कह सकते हैं)। देश की दुर्दशा- गरीबी, भुखमरी और अज्ञान का अनुभव करना। दूसरा है, देश की इस दुर्दशा का निवारण करने के लिए कोई कर्त्तव्य पथ निश्चित करना और तीसरा है, इस कर्त्तव्य पथ पर दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ना। उनकी दृष्टि में देश के भूखे, नंगे, गरीब और निरक्षर जो अधिकांशतया निम्न वर्गों व जातियों के हैं उनके उद्धार के लिये कार्य सामाजिक न्याय की स्थापना का कार्य है और इस मार्ग पर दृढ़तापूर्वक बढ़ना ही धीर वीर पुरुष का काम है। उन्होंने भतृहरि का उल्लेख करते हुए कहा कि-

निन्दन्तु नीति निपुणा, यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा अथेष्टम।
अद्यैव व मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीरा।।

(चाहे नीति निपुण लोग निंदा करें या प्रशंसा, लक्ष्मी आये या जहां उसकी इच्छा हो चली जाये, मृत्यु आज हो या सौ वर्ष बाद, धीर पुरुष तो वह है जो न्याय के पथ से तनिक भी विचलित नहीं होता।)

भारत में सामाजिक न्याय के प्रति जन जागृति धार्मिक व सामाजिक सुधार आंदोलनों से पैदा हुई। धार्मिक सुधार आंदोलन ने एक ओर पाखण्ड और दूसरी ओर जात पांत व अन्य मध्य युगीन कुमान्यताओं जो राष्ट्रीय प्रगति व एकता के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा थीं, के विरुद्ध संघर्ष का आह्वान किया (देसाई 1982:282)। आधुनिक युग में सामाजिक आंदोलन का स्वरूप भले ही धार्मिक रहा हो किन्तु इसकी प्रकृति लोकतांत्रिक व उदारवादी थी। इसने लिंग व जाति पर आधारित असमानता के विरुद्ध स्वतंत्रता व समानता का समर्थन किया। इसके माध्यम से समाज में पिछड़े वर्गों विशेषरूप से महिलाओं और अछूतों की मुक्ति के लिये ठोस पहल आंरभ हुई। तात्पर्य यह है कि जैसे-जैसे आंदोलन आगे बढ़ता गया इसके धार्मिक व सामाजिक पहलू कमजोर पड़ते गये और लौकिक व राजनैतिक पक्ष मजबूत होता गया।

बीसवीं सदी के दूसरे दशक तक राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व गांधी के हाथ में आ गया। यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्ति को उन्होंने आंदोलन का सर्वप्रमुख उद्देश्य निरूपित किया तथापि धार्मिक व सामाजिक सुधार कार्यों को गांधी ने

कभी निविड़ में नहीं जाने दिया। गांधी का ईश्वर और धर्म में दृढ़ विश्वास था किंतु वे धार्मिक कुरीतियों व अंधविश्वासों के विरुद्ध थे। उन्होंने एक धार्मिक निकाय की स्थापना पर जोर दिया जो धर्म-शास्त्रों से अतार्किक आख्यानों, जो नारी व शूद्रों के बारे में भ्रामक विचारों का प्रतिपादन करते हैं, को ढूंढे और उन्हें विलोपित कर धर्म को सही रूप में लोगों के सामने प्रस्तुत करें।

गांधी का लक्ष्य था सर्वोदय समाज की स्थापना। सर्वोदय समाज से गांधी का तात्पर्य एक ऐसे समाज से था जिसमें सभी उन्नत हों, सभी सुखी हों, सभी के साथ न्याय हो। सामाजिक प्रगति में सब समानरूप से भागीदार बनें और सभी को सामाजिक प्रगति में समानरूप से हिस्सा मिले-

सर्वेतु सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःखमाप्नुयात।।

गांधी यह जानते थे कि सर्वोदय समाज की उनकी परिकल्पना तब तक सार्थक नहीं हो सकती जब तक कि समाज के निर्बल व कमजोर वर्ग विशेषरूप से महिलायें और अछूत समुन्नत नहीं होते। इसलिये उन्होंने स्वतंत्रता के लिये संघर्ष के साथ महिलोत्थान तथा हरिजनोद्धार के कार्यक्रमों को अपने हाथ में लिया।

गांधी नारी को कमजोर समझना नारी के प्रति अन्याय मानते थे। उनका कहना था कि मानसिक क्षमता या अन्य किसी भी मायने में नारी पुरुष से कम नहीं है बल्कि कई मायनों में तो वह पुरुष से श्रेष्ठ है। (गांधी संद, राव, 1968:95; हरिजन 5 नवम्बर, 1938; यंग इंडिया : 10 अक्टूबर, 1930)। उनका कहना था कि भारत में नारी की आज जो दुर्दशा है उसके लिये बहुत सीमा तक शास्त्रीय विधान उत्तरदायी हैं जो नारी ने नहीं अपितु पुरुष ने बनाये हैं (गांधी, 1968-353)। गांधी (हरिजन 23 मई, 1947) ने महिलाओं को सलाह दी कि वे अपने को पुरुष के अधीन नहीं समझें और अपने ऊपर अवांछित सामाजिक दबावों का बहिष्कार करें। पुरुष और नारी के अधिकार समान हैं। यदि पुरुष देवता है तो नारी भी देवी है।

गांधी (सिंह, 1986: 154-57) ने धर्मशास्त्रों की मुखालफत की और कहा कि धर्मशास्त्र ईश्वरीय नहीं हैं। अस्पृश्यता, बाल विवाह और विधवा पुनर्विवाह निषेध जैसी कुप्रथायें ब्राह्मणवाद की उत्पत्ति हैं। ब्राह्मणों ने शास्त्रों में मानव जीवन की सही व्याख्या प्रस्तुत नहीं की। इसलिये गांधी (यंग इंडिया : 28 नवम्बर, 1936) ने धर्म-शास्त्रों से अवांछित निर्देशों को हटाने के लिये एक विश्वसनीय धार्मिक निकाय बनाये जाने का सुझाव दिया।

गांधी (1954:6) एक विवाह के पक्षधर थे। वे विवाह को एक धार्मिक संस्कार मानते थे। इसलिये वे हर दम्पत्ति से अपेक्षा करते थे कि वह विवाह को आत्म बन्धन मान कर जीवन पर्यन्त स्वीकार करें (हरिजनः 22 मार्च, 1942)। किंतु यदि कोई एक पक्ष नैतिक या अन्य किसी आधार पर साथ रहने से इंकार करता है और तलाक ही समस्या का एकमात्र निदान बचता है तो तलाक को स्वीकार किया जाना चाहिये (यंग इंडिया, 8 अक्टूबर, 1925)।

गांधी (यंग इंडिया, 21 जुलाई, 1921) बाल विवाह के विरुद्ध थे। वे कन्या को दान की वस्तु नहीं मानते थे। उनका कहना था कि माता-पिता कन्या के संरक्षक हैं, स्वामी नहीं। कन्या कोई सम्पत्ति नहीं है जिस पर पिता का अधिकार है और वह बूढ़ा, बालक जिसको चाहे उसे दान कर दे।

गांधी (यंग इंडियाः 5 अगस्त, 1926) ने विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि विधवा के पुनर्विवाह से धर्म और सतीत्व का नाश नहीं अपितु रक्षा होती है। उनका कहना था कि वैधव्य का स्वेच्छा से पालन होता है तो इसमें कोई बुराई नहीं है क्योंकि विधवा पुनर्विवाह की व्यवस्था से जरूरी नहीं है कि सभी विधवायें पुनर्विवाह करेंगी। जिन समाजों में ऐसी स्वतंत्रता है वहां भी सभी विधवायें या सभी विधुर पुनर्विवाह नहीं करते किंतु वैधव्य का बलात् पालन कराया जाना एक निन्दनीय कार्य है जिसका प्रतिकार करना सभी का नैतिक दायित्व है। जो विधवा पुनर्विवाह करना चाहती है उसके मार्ग में किसी प्रकार की रूकावट नहीं डाली जानी चाहिए (नवजीवनः 11 जुलाई, 1923)।

गांधी दहेज प्रथा के विरुद्ध थे। उन्होंने इसके विरुद्ध जनमत तैयार करने पर जोर दिया और ऐसे नवयुवकों का बहिष्कार किये जाने का आह्वान किया जो दहेज में धन प्राप्त करने के इच्छुक हों। उनका मानना था कि यह समस्या तब तक हल नहीं होगी जब तक कि अभिभावक अपने लड़के-लड़कियों के विवाह में जाति व क्षेत्रीयता के संकुचित दायरों से बाहर नहीं निकलते (गांधी संद. राव, 1968:95-10; हरिजन 23 मई, 1936)।

गांधी महिलाओं को घर की चाहरदीवारी में बंद रखने के कायल नहीं थे। वे सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की पुरुषों के समान भागीदारी के पक्षधर थे। वे महिलाओं में अच्छे सत्याग्रही के गुण देखते थे। उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन में महिलाओं के भाग लेने का आह्वान किया। उनके नेतृत्व में कस्तूरबा गांधी सहित, सरोजिनी नायडू, सुचेता कृपलानी, विजयालक्ष्मी पण्डित, अरुणा आसिफ अली व सुशीला नायर आदि ने सत्याग्रहों, आंदोलनों व रचनात्मक कार्यक्रमों में भाग लिया।

भारत में सामाजिक अन्याय का सबसे अधिक शिकार अछूत वर्ग था। यद्यपि अछूत देश की जनसंख्या के लगभग पन्द्रह प्रतिशत थे तथापि आर्थिक व शैक्षिक पिछड़ेपन के कारण समाज में उनकी स्थिति दासों से भी गई बीती थी। दासों के साथ कम से कम छुआछूत का बर्ताव तो नहीं होता था, जबकि इनको अछूत माना जाता था। अछूतों की दुर्दशा एवं दासता के लिये मुख्यरूप से शास्त्रीय निर्योग्यतायें उत्तरदायी थीं। अछूत अज्ञानी व कमजोर थे क्योंकि उन्हें शिक्षा व ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार नहीं था, अशक्त व कमजोर थे क्योंकि उन्हें शस्त्र रखने का अधिकार नहीं था। विविध निर्योग्यताओं के कारण समाज का यह भाग पशुवत जीवन व्यतीत कर रहा था। गांधी देश में अछूत वर्ग की अकल्पनीय समस्याओं और अमानवीय जीवन दशाओं से अनभिज्ञ नहीं थे। वे इस तथ्य से भली भांति परिचित थे कि जब तक इस वर्ग का उद्धार नहीं होता तब तक 'सर्वेतु सुखिनः सन्तु' की कल्पना पर आधारित उनके सर्वोदय समाज का सपना साकार नहीं हो सकता।

गांधी (संद, रदर मुण्ड 1979:263-64) का कहना था कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म पर एक काला धब्बा है। उनकी मान्यता थी कि यदि अस्पृश्यता रहती है तो हिन्द धर्म मिट जायेगा और यदि हिन्दू धर्म को जीवित रखना है तो अस्पृश्यता को मिटाना होगा। उन्होंने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में कहा कि अस्पृश्यता रहे इससे अच्छा है कि हिन्दू धर्म मिट जाये।

कुछ लोगों का सोचना था कि छुआछूत का अंत और दलित की मुक्ति धर्मान्तरण से ही संभव है। गांधी इस बात से सहमत नहीं थे। उनका कहना था कि हरिजन समस्या का निदान धर्मान्तरण नहीं है किन्तु यदि हरिजन ऐसा समझते हैं तो उन्हें इस बात की पूरी आजादी होनी चाहिए। वे कहते थे कि छुआछूत और हरिजन समस्या हिन्दू समाज की समस्या है और उसके निवारण की पहल भी हिन्दू समाज को ही करनी है। गांधी के अनुसार अस्पृश्यता समाप्त हो गई है इस बात का निर्णय अस्पृश्य ही करेंगे और जब तक एक भी अछूत इस देश में यह कहता है कि छुआछूत समाप्त नहीं हुआ है तब तक यह कहना कि छुआछूत का अंत हो गया है गलत है। उनकी दृष्टि में इस बात की परवाह नहीं की जानी चाहिए कि अछूत धर्मान्तरण करते हैं बल्कि परवाह इस बात की होनी चाहिए कि हम अपनी गलती को स्वीकार करें और उसे दूर करने के लिये ईमानदारीपूर्वक कार्य करें। उन्होंने बहुत साफ शब्दों में कहा कि यदि एक भी अछूत हिन्दू के रूप में बचता है तो भी वह हरिजनोद्धार के अपने कार्य में लगे रहेंगे और इस बात का पूरा प्रयास करेंगे कि वह अस्पृश्यता के अभिशाप से मुक्त हो और दूसरों के समान समाज में सम्मानपूर्वक जीवन बिताये।

गांधी की पहल पर पूरे देश में 27 सितम्बर से 2 अक्टूबर (1932) तक देश में अस्पृश्यता निवारण सप्ताह मनाया गया। अमृत लाल बी. ठक्कर के नेतृत्व में 'अखिल भारतीय अस्पृश्यता विरोधी लीग' की स्थापना की गई। इसी समय गांधी ने प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र 'हरिजन' का प्रकाशन आरंभ किया। इस पत्र के माध्यम से उन्होंने अस्पृश्यता के विरुद्ध जनमत जागृत करने का काम किया।

'अस्पृश्यता विरोधी लीग' का नाम आगे चलकर 'सर्वेन्ट्स ऑफ अनटचेबल्स सोसायटी' रखा गया जो अंततः 'हरिजन सेवक संघ' के नाम से विख्यात हुई।

'हरिजन सेवक संघ' का लक्ष्य सत्य व अहिंसा पर आधारित क्रांति के माध्यम से हरिजनों को शेष हिन्दुओं के साथ पूर्ण समानता प्रदान करना था। संघ ने मुख्य रूप से तीन क्षेत्रों में कार्य किया, शिक्षा के क्षेत्र में: हरिजनों के लिये पाठशालायें खोलना, छात्रवृत्ति प्रदान करना, छात्रावास बनाना आदि, आर्थिक क्षेत्र में: औद्योगिक विद्यालय खोलना आदि तथा कल्याण कार्यों के अंतर्गतः कुओं, घाटों, धर्मशालाओं एवं मंदिरों को हरिजनों के लिए सुलभ कराना, हरिजन बस्तियों में चिकित्सालय चलाना तथा मुफ्त दवा का वितरण करना आदि। वर्ष 1933-34 के बीच गांधी ने हरिजनों के लिये देशव्यापी दौरा किया और जनता से हरिजन कल्याण हेतु कोष एकत्रित किया।

गांधी ने हरिजनों को अपने आश्रम में रखा और उनकी सेवा की। उन्होंने एक हरिजन कन्या को अपनाया। गांधी ने हरिजन बस्तियों का विस्तृत दौरा किया और हरिजनों के साथ तादात्म्य स्थापित किया। 'गांधी सेवा संघ' की सदस्यता सम्बन्धी नियमावली में अन्य शर्तों के साथ एक अनिवार्य शर्त यह थी कि उसकी सदस्यता किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं होगी जिसका सत्य और अहिंसा में तो विश्वास हो किन्तु अस्पृश्यता निवारण में नहीं हो (गांधी संद., सीता रमैय्या, 1951:199)। सभी पिछड़ी जातियों की सेवा और महिलाओं की स्थिति में सुधार संघ की गतिविधियों का महत्त्वपूर्ण भाग था (सीता रमैया, 1951:207)।

गांधी अस्पृश्यों की समस्या को शांतिपूर्ण वैधानिक तरीके से हल करना चाहते थे। उन्होंने हरिजनों के मंदिर में प्रवेश आंदोलन का समर्थन किया तथा भारत सरकार से 'रंगा अयूयर अस्पृश्यता निवारण बिल' के क्रियान्वयन की सिफारिश की। यद्यपि राष्ट्रीय स्तर पर उस समय कोई अस्पृश्यता विरोधी कानून तो पारित नहीं हो पाया किंतु कई राज्यों और रियासतों में अस्पृश्यता के विरुद्ध कानून बनाये गये।

संभवतः महिलाओं और हरिजनों को आवश्यक वैधानिक अधिकार प्रदान कराये जाने के उद्देश्य से ही गांधी ने संविधान सभा की सदस्यता तथा संविधान निर्मात्री समिति की अध्यक्षता के लिये डॉ. अम्बेडकर के नाम की अनुशंसा की। यद्यपि अम्बेडकर कांग्रेस और गांधी के कटु आलोचक थे (लोखाण्डे, 1982:62)। देश के आजाद होने पर गांधी से परामर्श के उपरान्त ही जवाहर लाल नेहरू ने डॉ. अम्बेडकर को मंत्रिमण्डल में सम्मिलित कर देश का प्रथम कानून मंत्री बनाया यद्यपि वे कांग्रेस के सदस्य नहीं थे (कीर, 1981:395-97)।

भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना के लिये किये गये संघर्ष का इतिहास डॉ. भीमराव अम्बेडकर के अवदान का उल्लेख किये बिना कभी पूरा नहीं हो सकता। अम्बेडकर एक विद्रोही थे जिन्होंने सबको राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक न्याय दिलाने के लिए संघर्ष किया (धबन, 1991:12)। आधुनिक युग में न्यायपूर्ण समाज की रचना के लिये देश में जिन सुधारकों ने कार्य किया उनमें से अधिकांश को इस कार्य के लिए प्रेरणा परानुभूति वश मिली। केवल डॉ. अम्बेडकर ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें यह स्वानुभूति वश मिली। अछूत परिवार में जन्म लेने के कारण सामाजिक भेदभाव और तिरस्कार की जो पीड़ा अम्बेडकर ने झेली थी वह किसी अन्य ने नहीं। इसलिये सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष विशेषरूप से दलितों के उद्धार के लिए संघर्ष को उन्होंने अपने जीवन का ध्येय निरूपित किया। बहुत स्पष्ट शब्दों में अम्बेडकर ने कहा कि जिस दलित जाति में मैं पैदा हुआ उसे मुक्ति दिलाना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है, यदि मैं इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकता तो गोली मार कर अपना जीवन समाप्त कर दूंगा। यह स्वीकारोक्ति सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष के प्रति अम्बेडकर की प्रतिबद्धता और समर्पण को दर्शाती है।

अम्बेडकर सवर्णों के हृदय परिवर्तन और सामाजिक सुधार सम्बन्धी गांधी के कार्यक्रमों पर भरोसा नहीं करते थे और न ही वे दलितों की मुक्ति के लिये लम्बे समय तक इंतजार करने के पक्ष में थे। उनकी मान्यता थी कि

स्वतंत्रता और समानता सम्बन्धी जो अधिकार दलितों से अतीत में छीन लिये गये उनकी पुनर्प्राप्ति याचना से नहीं अपितु कठिन संघर्ष से ही हो सकती है। (अम्बेडकर संद. कीर, 1981:82)। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अम्बेडकर ने संघर्ष का मार्ग चुना। दलितों में अपने अधिकारों के प्रति जागृति पैदा करने के उद्देश्य से उन्होंने 'मूक नायक' (1920) और 'बहिष्कृत भारत' (1927) पाक्षिकों के प्रकाशन के लिए सार्थक पहल की। 1927 से 1930 के बीच उन्होंने दलितों को सार्वजनिक प्रकृति के स्थलों के उपयोग सम्बन्धी अधिकार दिलाने के लिए संघर्ष किया। इन संघर्षों में चोबदार ताल से पानी लेने सम्बन्धी 'महत सत्याग्रह' सहित अम्बादेवी, ठाकुर द्वारा, गणपति प्रांगण तथा कालाराम मंदिरों में प्रवेशार्थ किये गये आंदोलन प्रमुख हैं।

हिन्दू धर्म में सुधार ले आने से दलितों को सामाजिक न्याय मिल पायेगा, इस पर अम्बेडकर को कतई विश्वास नहीं था। उनका कहना था कि इतिहास साक्षी है कि अतीत में महात्माओं ने तेज आंधी की तरह केवल धूल उड़ाया है, उन्होंने असमान स्तरों को समान नहीं किया (कीर, 1981:166) भारत में अनेक महात्मा हुए जिनका एक मात्र उद्देश्य अस्पृश्यता निवारण और दलित वर्गों की स्थिति को उन्नत करना और उन्हें मुख्य धारा में संविलित करना था किन्तु उनमें से प्रत्येक अपने मिशन की प्राप्ति में विफल रहा। महात्मा आये और महात्मा चले गये किंतु अछूत अछूत ही बने रहे। (कीर, 1981:208)। दलितों से उनका कहना था कि तुलसी की माला जपने अथवा राम भजन करने से कर्ज कम नहीं होता और न ही इससे लगान में कटौती होती है। तीर्थ करने से माहवारी वेतन नहीं मिला करता (कीर, 1981:218-19)।

अम्बेडकर मानते थे कि समानता और सामाजिक न्याय की स्थापना का काम संतों के वश का नहीं है। उन्होंने (संद. लिमये, 1990-35) बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा कि संतों ने कभी जाति प्रथा या अस्पृश्यता के खिलाफ अभियान नहीं छेड़ा। इस दुनिया में क्या होता है, विभिन्न समूहों की क्या स्थिति है और उनके इहलौकिक संघर्ष क्या हैं इन बातों की उन्हें चिंता नहीं थी। उनकी चिंता थी-आदमी और परमात्मा के बीच सम्बन्ध। संतों ने कभी नहीं यह कहा कि सभी मनुष्य बराबर हैं। उन्होंने कहा कि सभी मनुष्य ईश्वर की नजरों में बराबर हैं। यह बहुत भिन्न और हानिप्रद प्रस्थापना है जिसका उपदेश देना किसी के लिये मुश्किल नहीं है। संतों ने कभी जाति को नष्ट करने की, इस दुनिया में ऊंचनीच के भेद को समाप्त करने की बात नहीं की।

अम्बेडकर दलितों में शिक्षा के प्रसार को बहुत अधिक महत्त्व देते थे क्योंकि शिक्षा उनकी दृष्टि में दलितों की विमुक्ति का सशक्त माध्यम थी (सिंह, 1991:101)। दलितों में शिक्षा के प्रसार के उद्देश्य से उन्होंने बहिष्कृत हितकारिणी सभा (1924), डिप्रेस्ड क्लास एजुकेशन सोसायटी (1928) तथा पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी (1946) की स्थापना की। पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी के तत्त्वावधान में उन्होंने बम्बई में सिद्धार्थ कॉलेज (1946) तथा औरंगाबाद में मिलिंद कॉलेज (1951) की स्थापना की।

अम्बेडकर (संद., सिंह एम. 1991:10) का कहना था कि हम गुलामी की अवस्था को इसलिये प्राप्त हुए क्योंकि हमारे पास ज्ञान नहीं था और शक्ति नहीं थी। वे शिक्षा को शक्ति प्राप्ति का एक मात्र माध्यम मानते थे। लोकतांत्रिक व्यवस्था में शिक्षा लोगों को राजनैतिक दृष्टि से जागरूक बनाने तथा अपने हितों की रक्षा के लिये एकजुट होने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है किंतु इसके लिये एक राजनैतिक मंच और कुशल नेतृत्व की आवश्यकता होती है।

डॉ. अम्बेडकर का सोचना था कि दलित वर्ग तक न्यायपूर्ण अधिकारों की प्राप्ति और हितों की रक्षा नहीं कर सकता था जब तक कि राजनैतिक शक्ति पर उसका अधिकार नहीं होता क्योंकि निर्धन स्थिति के कारण आर्थिक शक्ति पर अधिकार कर पाना उसके लिये संभव नहीं है किंतु लोकतांत्रिक व्यवस्था में अपनी उल्लेखनीय संख्या के कारण वह राजनैतिक शक्ति प्राप्त कर सकता है। राजनैतिक शक्ति पर अधिपत्य से उसके लिये आर्थिक व समाजिक हितों की रक्षा करना कठिन नहीं होगा।

दलितों में राजनैतिक जागरूकता लाने की दृष्टि से अम्बेडकर ने 'आल इंडिया शेड्यूल्ड कास्ट्स फेडरेशन' (1942) की स्थापना की। दलित युवकों को उन्होंने 'समता सैनिक दल' (1927) के झण्डे तले संगठित किया। दलितों के राजनैतिक धरातल के विस्तार के उद्देश्य से अम्बेडकर ने दलितों एवं श्रमिकों को एक संयुक्त राजनैतिक इकाई के रूप में गठित करने का प्रयास किया और 'इंडिपेंडेन्ट लेबर पार्टी' (1936) के नाम से एक नये राजनैतिक दल का गठन किया। आगे चलकर उनके अनुयाइयों ने उनके निर्देश पर 'भारतीय रिपब्लिकन पार्टी' के झण्डे तले अपना राजनैतिक मोर्चा संभाला।

साउथ बारो समिति तथा साइमन कमीशन के सम्मुख अथवा बाम्बे लेजिस्लेटिव कौंसिल, गोलमेज सम्मेलन एवं कान्स्टिच्यूएण्ट एसेम्बली में जब भी कभी डॉ. अम्बेडकर को बोलने का मौका मिला उन्होंने दलितों के पक्ष को सशक्त रूप से प्रस्तुत किया। उनकी पहल पर जब ब्रिटिश सरकार ने दलितों को पृथक प्रतिनिधित्व प्रदान करने की घोषणा की तो गांधी ने इसके विरुद्ध आमरण अनशन आरंभ कर दिया। गांधी के अनशन पर होने वाली राष्ट्रव्यापी प्रतिक्रिया को देखते हुये डॉ. अम्बेडकर उनसे पूना की यरवदा जेल में मिले। इस मुलाकात के दौरान डॉ. अम्बेडकर तथा गांधी एवं कांग्रेस के प्रतिनिधियों के बीच एक समझौता हुआ जिसे पूना पैक्ट (1932) के नाम से जाना जाता है। इस समझौते के फलस्वरूप जहां अम्बेडकर ने दलितों के लिये पृथक प्रतिनिधित्व की मांग का परित्याग किया वहां कांग्रेस ने विधान मण्डलों में दलितों के लिये आरक्षण व अन्य सुविधायें प्रदान किये जाने में अत्यधिक उदारता का परिचय दिया।

सामाजिक न्याय की स्थापना में डॉ. अम्बेडकर के अवदान की चर्चा करते समय उनके तत्सम्बन्धी वैधानिक एवं संवैधानिक योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। ब्रिटिश भारत की वायसराय कौंसिल के लेबर मेम्बर (1942-46) के रूप में अम्बेडकर ने महिला श्रमिकों व पुरुष श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिये तत्कालीन श्रम सन्नियमों में संशोधन किये और उन्हें सुरक्षा प्रदान करने तथा उनके कल्याण के लिये अनेक योजनायें लागू कीं। श्रमिकों में निम्न व पिछड़ी जातियों की बहुतायत होने से श्रमिकों को मिलने वाले लाभ से इन जातियों के लोगों को तो लाभ मिला ही अन्य जातियों के गरीबों को भी लाभ प्राप्त हुआ। इस दौरान उन्होंने ब्रिटिश सरकार से दलितों के लिये छात्रवृत्ति तथा शासकीय सेवाओं में आरक्षण का भी प्रावधान कराया। संविधान की मसौदा समिति के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं श्रमिकों को न्याय दिलाने के उद्देश्य से संविधान में अनेक प्रावधान किये। कानून मंत्री के रूप में डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दू कोड बिल की रचना की जो हिन्दू महिलाओं की मुक्ति तथा हिन्दू समाज के पुनर्गठन की दिशा में उनका अविस्मरणीय योगदान है।

संदर्भ सूची -

1. कीर, धनंजय, 1981, डॉ. अम्बेडकरः लाइफ एण्ड मिशन्स पापुलर प्रकाशन, बम्बई
2. गांधी, एम.के., 1954, सर्वोदयः द वेलफेयर आफ आल (संपा.) भारतन कुमारप्पा, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद
3. गांधी, एम.के., 1962, इन सर्च आफ द सुप्रीम अंक 13 संक. एवं संपा. वी.वी. खेर, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद
4. गांधी, एम.के., 1968, संपूर्ण गांधी वांगमय (अंक 27) प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली
5. देसाई, ए.आर., 1982, सोशल बैक-ग्राउण्ड आफ इण्डियन नेशनलिज्म, पापुलर प्रकाशन, बम्बई
6. धवन, शकुन्तला, 1991, डॉ. अम्बेडकरः अपोस्टल आफ सोशल जस्टिस, योजना (अप्रैल 15):12-13
7. प्रसाद, अनिरुद्ध, 1991, आरक्षणः सामाजिक न्याय एवं राजनैतिक संतुलन, रावत, जयपुर
8. रदरमुण्ड, इंदिरा, 1979, महात्मा गांधी, हरिजन गांधी मार्ग 15:262-69
9. रा.यू.एस.एम. (संपा.), 1968, द मेसेज आफ महात्मा गांधी, सूचना एवं प्रसारण विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली
10. लोखण्डे, जी.एस., 1982, भीमराव रामजी अम्बेडकरः अ स्टडी इन सोशल डेमोक्रेसी इन्टेलेक्चुअल, पब्लिशिंग हाउस,

नई दिल्ली

11. लिमये, मधु, 1990, डॉ. अम्बेडकरः एक चिन्तन (अनू.) मस्तराम कपूर, सरदार वल्लभ भाई पटेल एजुकेशनल सोसायटी, नई दिल्ली
12. विवेकानन्द, 1973 अ, विवेकानन्द साहित्य (खण्ड 4), अद्वैत आश्रम, कलकत्ता
13. विवेकानन्द, 1973 ब, विवेकानन्द साहित्य (खण्ड 5), अद्वैत आश्रम, कलकत्ता
14. सिंह, आर.जी., 1986, भारतीय दलितों की समस्यायें एवं उनका समाधान, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
15. सिंह, एम.एम., 1991, अम्बेडकरः द रिलेन्टलेस क्रूसेडर, योजना (अप्रैल 15):10-15

सह-आचार्य, अहिंसा एवं शांति विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान
लाडनूं (राजस्थान)

◆ ◆ ◆

महत्त्वपूर्ण सूचना

अलख दृष्टि (त्रैमासिक) शोध-पत्रिका के पाठकों, ग्राहकों व शुभचिन्तकों को सूचित किया जाता है कि वे अब भारत की ओरियण्टल बैंक ऑफ कॉमर्स की किसी भी शाखा में खाता नं. 10271131001021 तथा IFSC Code No. ORBC 0101027 में शुल्क, अनुदान या विज्ञापन की राशि जमा कर सकते हैं। साथ ही हमारे कार्यालय को सूचित करें कि अमुक राशि किस ब्रांच में जमा की गई है। इसके अतिरिक्त राशि या शुल्क मनीऑर्डर या बैंक ड्राफ्ट द्वारा भी भेज सकते हैं और आप ई-मेल से शोध-लेख भी भेज सकते हैं। पत्रिका का ई-मेल dr.aptripathi@rediffmail.com है। कृपया सुविधा का पूरा लाभ उठाएँ।

—व्यवस्थापक